पुस्तक समीक्षा

पुस्तक का नाम– *भारतीय सौंदर्यबोध और तुलसीदास*
लेखक– रामविलास शर्मा
प्रकाशक– साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली
मूल्य– 350 रुपये
पृष्ठ– 527

'*भारतीय सौंदर्यबोध और तुलसीदास*' रामविलास शर्मा की अंतिम कृति है। इस समय तक आते-आते वे वृद्धावस्था और बीमारी के चलते लिख नहीं पा रहे थे। इस कृति को उन्होंने बोलकर रिकॉर्ड करवाया और फिर उनकी देख-रेख में इसका लिप्यांतरण हुआ। इस कृति को लिखने के मूल में उनका आग्रह भारतीय-सौंदर्य के कलात्मक प्रतिमानों की पुनर्व्याख्या रही है और पश्चिम के उन विद्वानों का प्रत्याख्यान, जो यह कहते चले आ रहे थे कि भारत के पास न कला है, न दर्शन, न सौंदर्यबोध।

समीक्ष्य कृति में अपनी यात्रा उन्होंने वेदों से आरंभ की और तुलसीदास तक पहुँचे। 'भारतीय दर्शन और सौंदर्यबोध', 'नगर सभ्यता और कलाओं का विकास', 'कला इतिहास', 'कलाओं के इतिहास की समस्याएँ' इनके पड़ाव रहे।

भारतीय और यूनानी दर्शन पर कार्य करते हुए ऋग्वेद के महत्त्व को लेकर डॉ. शर्मा का अनुभव निर्भ्रांत हो गया। वे यह मानने लगे कि इसके अध्ययन के बिना भारतीय चिंतन एवं दर्शन-परंपरा को ठीक से नहीं समझा जा सकता। ऐसा इसलिए क्योंकि इस ग्रंथ से ही भारतीय दर्शन की कई धाराएँ-उपधाराएँ विकसित हुईं। वेदान्त, उपनिषद्, आरण्यक, ब्राह्मण ग्रंथ के अलावा जाने-अनजाने चिंतन की हर कोटि उससे कहीं-न-कहीं, किसी-न-किसी रूप में संबद्ध रही।

मैक्समूलर, मार्शल, पीगॉट, मैकडॅनल, पार्गीटेर, पुसालकर, प्रो. रानाडे, बी.वी. काक, श्रीपाद, दामोदर सातवलेकर आदि विभिन्न देशी-विदेशी विद्वानों तक का मानना रहा है कि मानवीय सभ्यता और भारतीय प्रायद्वीप की संस्कृति के

कई बीज ऋग्वेद में सुरक्षित हैं। यह बात अपनी जगह बिल्कुल कायम है कि अपनी चिंतन-परंपरा को जाने बिना किसी दूसरी धारा के प्रति न्याय कर पाना संभव नहीं। उन्होंने हमें खबरदार किया कि -''जबतक भारतीय दृष्टि और भारतीय स्रोतों से भारतीय मनीषा या भारतविद्या का सम्यक् अध्ययन नहीं किया जाएगा-हम एकांगी उपनिवेशवादी सोच और अराजक निष्कर्ष के सामने बौने बने रहेंगे।'' (शर्मा, रामविलास. 2001. *भारतीय सौंदर्यबोध और तुलसीदास.* साहित्य अकादमी प्रकाशन, दिल्ली, ब्लर्व आरंभ)

आज इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि भारतीय दर्शन को बहुधा यूरोपीय दर्शन के आलोक में और यूरोपीय चिंतकों की दृष्टि से प्रस्तुत किया गया। इस एकांगीपन के शिकार समस्त औपनिवेशिक देश रहे। इन बातों की स्पष्टता के बावजूद इससे ज्यादा ढिठाई की बात क्या होगी कि कई कथित उत्साही, बेकल भारतीय विद्वानों ने भी अंग्रेजी अनुवादों की बिना पर अपनी सारी बौद्धिक उछल-कूद दिखायी। जो ये उछल-कूद नहीं कर पाये, उन्होंने जीतश्रमी विद्वानों के वैदिक अध्ययन को शको-सुबहे की निगाह से देखा और कटाक्ष किया। नामवर सिंह की आलोचना '*इतिहास की शव-साधना*' (आलोचना, अप्रैल-जून, 2001) इसी की मिसाल है।

मुझे एक बात समझ में नहीं आती कि कोई अंतरिक्ष-विज्ञानी, जीव-विज्ञानी, भू-विज्ञानी यदि हज़ारों-करोड़ों वर्ष पीछे जाकर ब्रह्मांड को बनाने वाले पार्टिकल्स, डायनासोर की मौत का कारण (विलुप्त होने का कारण), धरती के प्लेटो की आरंभिक संरचना आदि को खोजता है, तो वह क्रांतिकारी खोज मानी जाती है और यदि कुछ हज़ार वर्ष पहले की रचना में कुछ खोजने-जानने का प्रयास किया जाता है, तो वह 'इतिहास की शव-साधना' कैसे हो गयी? जिसे नामवर सिंह इतिहास की शव-साधना बताते हैं, वह मुक्तिबोध के शब्दों में रामविलास शर्मा के लिए 'सभ्यता की समीक्षा' है। वैदिक संस्कृति वैदिक समाज-व्यवस्था का मानसिक प्रतिबिंब है और डॉ. शर्मा ने ऋग्वेद के बहाने उसे जानने, समझने और मार्क्सवादी दृष्टि से परखने की कोशिश की है।

डॉ. शर्मा ने कई-कई दफ़ा यह स्पष्ट किया है कि भारतीय परंपरा और मनीषा को न सिर्फ पंडितों और कर्मकांडी पुरोहितों के चश्मे से पढ़ा जा सकता है और न पंडों के वर्चस्व को स्वीकार कर वेदों का तिरस्कार किया जा सकता है। कृति के पहले अध्याय में उन्होंने वैदिक कवियों के सौंदर्यबोध की चर्चा की है। उनकी काव्य-दृष्टि का आकलन और मूल्यांकन किया है। इस क्रम में उन्होंने भारतीय सौंदर्यबोध की निरंतरता को जगह-जगह चिह्नित करने की तरतीब की है। इसमें उन्होंने सौंदर्य-सूचक शब्द, आभूषण, केश-विन्यास, वस्त्र-सज्जा, मनुष्य और पशुओं का देह-सौंदर्य, चित्रकारी, नृत्य-संगीत, प्राकृतिक जीवन-सौंदर्य, मनुष्य, दुखी जीवन और वेदांत आदि नुक्तों से वैदिक कवियों के सौंदर्यबोध का विवेचन किया है।

ऋग्वेद के अध्ययनों में यह पाया गया कि ऋग्वेद के मंत्रदृष्टा कवि आदिशक्ति प्रतीत होने

वाली प्रकृति और वनस्पति से सीधा संवाद करते हैं, उसे संबोधित करते हैं। अपने समस्त कृत्य एवं लोकाचार में उन्हें आमंत्रित करते हैं। वैदिक कवि सूर्य एवं प्रकाश के उपासक हैं। उनकी भाषा में प्रकाश-सूचक शब्दों की प्रचुरता है। सूर्य उनके प्रिय दवता हैं। प्रकाश का वर्णन वे बार-बार करते हैं। इसके साथ ही वे अंधकार का उल्लेख भी करते हैं। बहुधा अंधकार और प्रकाश दोनों का चित्र एक साथ उपस्थित करते हैं।

वैदिक कवियों की भाषा में सुंदरतासूचक एक छोटा-सा उपसर्ग 'सु' है। मनुष्य के बाह्य-जगत और अंतर्जगत में जो कुछ उन्हें अच्छा लगता है, उसके पहले वे यह उपसर्ग जोड़ देते हैं। अग्नि हमें प्रिय है और 'प्रिया: सुअग्नय: वयम्'-सुंदर अग्नियों को हम भी प्रिय हों। वैदिक काल में मूर्ति बनाने वाले शिल्पी अवश्य थे किंतु उनके शिल्प का विकास कितना हुआ था, इसके अनुमान के लिए यथेष्ट सामग्री प्राप्त नहीं है परंतु वास्तुकला का यथेष्ट विकास हुआ है, इसके अनेक संकेत ऋग्वेद में हैं।

वैदिक समय में घर के द्वार पूर्व की ओर खुलते थे। यह परंपरा की प्रवाह्मानता है कि गृह-निमार्ण में यही परिपाटी आज भी चलन में है। ऋग्वेद में 'पुर' एक तरह की बस्ती है और ग्राम दूसरी तरह की बस्ती है। दोनों में भेद किया गया है। डॉ. शर्मा बताते हैं कि ऋग्वेद के रचनाकाल में विनिमय का यथेष्ट विकास हो चुका था, इसलिए यह मानना तर्कसंगत है कि ग्राम से भिन्न ये पुर विनिमय के केंद्र थे।

चित्रकला से प्रभावित होने वाले कवि अनेक देशों में रहे हैं, उन पर काफी लिखा गया है, परंतु स्थापत्य से प्रभावित होने वाले कवि कम रहे हैं और उन पर लिखा भी बहुत कम गया है। ऋग्वेद के कवियों ने स्थापत्य का वर्णन अपने सूक्तों में किया है। असके अलावा उनकी सूक्त रचना पर भी स्थापत्य का प्रभाव दिखयी देता है।

ऋग्वेद में सोम संबंधी एक सूक्त में चार मंत्र हैं। प्रत्येक मंत्र के अंत में यह शब्दावली दोहराई जाती है- 'इन्द्राय इन्द्रो परिस्रवा' (शर्मा, रामविलास. 2001. *भारतीय सौंदर्यबोध और तुलसीदास.* साहित्य अकादमी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 59)

डॉ. शर्मा का कहना है, यह सूक्त यथार्थवादी चित्रण का श्रेष्ठ उदाहरण है। पहले मंत्र में कहा गया है, मनुष्य की बुद्धि अनेक प्रकार की होती है, उसी तरह उसके कर्म भी अनेक प्रकार के होते हैं। बढ़ई लकड़ी का काम चाहता है। वैद्य रोगी चाहता है और यज्ञ करने वाला विद्वान याजक की इच्छा करता है। हे तेजस्वी सोम, तू इन्द्र के लिए स्रवित हो, और अंत में भार ढोने वाला घोड़ा ऐसे रथ की इच्छा करता है जो आसानी से खींचा जाए। मित्र परस्पर हास-परिहास की इच्छा रखते हैं। मेंढक जलमय तालाब की इच्छा करता है। हे सोम तुम इंद्र के लिए स्रवित हो।

ऋग्वेद में काल के चौरानवे अवयव बताए गए हैं- एक संवत्सर, दो अयन, पाँच ऋतु, बारह मास, चौबीस पक्ष, तीस दिन-रात, आठायाम, बारह राशियाँ-कुल चौरानवे। वैदिक कवि प्रकृति

और मनुष्य के सौंदर्य में फर्क करते हुए बताते हैं कि प्रकृति का नित्य नवीकरण होता है परंतु मनुष्य बूढ़ा होता जाता है।

कई विद्वानों को शिकायत है कि ऋग्वेद में सामाजिक जीवन और पारिवारिक जीवन की छवि बहुत कम है, जिससे हमें उस समय के समाज के बारे में यथोचित जानकारी नहीं मिल पाती। इसका कारण यह है कि ऋग्वेद के रचनाकार सामाजिक जीवन, पारिवारिक जीवन और प्रकृति पर काव्य रचने नहीं बैठे थे। उनका लक्ष्य देवों को यज्ञ में बुलाना, अपनी स्तुतियाँ उन तक पहुँचाना था। इन्हीं कर्मों के वर्णन में उन्होंने सामाजिक जीवन की बहुत-सी बातें कह दी हैं।

वैदिक कवियों की भूमिका इस मायने में महत्त्वपूर्ण है कि उन्होंने ऐसे काव्य की सृष्टि की, जिसमें श्रम की प्रतिष्ठा है। वो कहते हैं- ''श्रान्तस्य ऋते देवाः सख्याय न भवन्ति'' (शर्मा, रामविलास. 2001. *भारतीय सौंदर्यबोध और तुलसीदास.* साहित्य अकादमी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 85) अर्थात् जो मनुष्य श्रम करते हैं, देव उनसे मित्रता करते हैं। इसके अलावा डॉ. शर्मा का कहना है- ''ऋग्वेद की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहाँ शारीरिक श्रम और मानसिक श्रम का भेद मिट गया है। यह हमारा अतीत है और जिस भविष्य की ओर हमें जाना है, वह भी यही है।'' (शर्मा, रामविलास. 2001. *भारतीय सौंदर्यबोध और तुलसीदास.* साहित्य अकादमी प्रकाशन, दिल्ली, ब्लर्व अंत)

इन कवियों की जिजीविषा विकट है। वे कहते हैं- हम सौ शरद देखें, सौ शरद तक जीवित रहें- ''पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं'' (शर्मा, रामविलास. 2001. *भारतीय सौंदर्यबोध और तुलसीदास,* साहित्य अकादमी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 88)

अंततः इन कवियों या इनके काव्यों का महत्त्व यह है कि विश्व संस्कृति को इन्होंने कुछ ऐसे चिरंतन सूत्र दिए जो बार-बार दुहराकर भी पुराने या अनुपयुक्त नहीं हुए।

इसी प्रकार 'भारतीय दर्शन और सौंदर्यबोध' में डॉ. शर्मा जीवन में सौंदर्यबोध की जरूरत बताते हुए रेखांकित करते हैं- ''भारतीय दर्शन की मुख्य धारा यथार्थवादी है और वह कलात्मक सृजन की पोषक है।'' (शर्मा, रामविलास. 2001. *भारतीय सौंदर्यबोध और तुलसीदास,* साहित्य अकादमी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 113) इस बात की स्पष्टता के लिए वह भरतमुनि के *नाट्यशास्त्र* का उल्लेख करते हैं।

'*नगर सभ्यता और कलाओं का विकास*' इस कृति का विस्तृत एवं महत्वपूर्ण अध्याय है। इसमें उन्होंने रामायण, भरतमुनि के नाट्यशास्त्र, ऋग्वेद, पुराण, उपनिषद्, कालिदास, रामचरितमानस, निराला रचनावली, भगवतशरण उपाध्याय के भारतीय कला का इतिहास, वासुदेवशरण अग्रवाल, राइस डेविड्स के बुद्धिष्ट इंडिया, कौटिल्य के अर्थशास्त्र, नीलकंठ शास्त्री, राधाकुमुद मुखर्जी, आनंदकुमार स्वामी, डार्विन, शैली, कीट्स आदि के साहित्य की व्याख्या करते हुए नगर सभ्यता एवं कलाओं के इतिहास

को प्रस्तुत किया है। इसी क्रम में आगे बढ़ते हुए उन्होंने कलाओं के इतिहास की समस्या पर विचार किया है और देशी-विदेशी विद्वानों की भूलों के नोंक-पलक को दुरुस्त किया है। डॉ. शर्मा तुलसीदास पर एक किताब अलग से लिखना चाहते थे। इस पुस्तक में तुलसीदास पर चार निबंध हैं, जिनमें से तीन पहले की पुस्तकों में से लिए गये हैं। एक निबंध भारतीय सौंदर्यबोध की शृंखला में तुलसीदास को लेकर है- '*तुलसीदास का सौंदर्यबोध*'। डॉ. शर्मा तुलसीदास को कहाँ देखते हैं और रखते हैं-ये निबंध उनके प्रमाण हैं। उनका मानना रहा है कि तुलसी कभी-कभी राम से भी बड़े हैं और तुलसीदास को राम से भी बड़ी लड़ाई लड़नी पड़ी थी।

तुलसीदास के सौंदर्यबोध के विवेचन क्रम में डॉ. शर्मा ने *रामललानहछू, पार्वतीमंगल, कवितावली, रामचरितमानस* आदि से तुलसी के विशद् सौंदर्यबोध का परिचय दिया है और तुलसी साहित्य के बारे में कुछ अनछुई-सी जानकारी भी। *रामललानहछू* शृंगार-प्रधान काव्य है जबकि *मानस* भक्ति प्रधान। दोनों जगह क्रमशः भक्ति एवं शृंगार गौण है। *रामललानहछू* में ब्याह की तैयारी है और *पार्वतीमंगल* में ब्याह हो जाता है। *नहछू* में राम और *पार्वतीमंगल* में शिव दूल्हा हैं। *पार्वतीमंगल* में शिव के सौंदर्य का स्थान गौण है और पार्वती का सौंदर्य मुख्य है जबकि *मानस* में सीता का सौंदर्य स्थान गौण है और राम का मुख्य। इसी तरह का विपर्यय है कि *पार्वतीमंगल* में पुत्री का जन्म उतना ही मंगलमय है, जितना *मानस* में पुत्र का विवाह।

'*तुलसी की भक्ति*' निबंध में डॉ. शर्मा हिंदी साहित्य के सौंदर्यबोध एवं परंपरा और तुलसीदास को अपरिहार्य रूप से संबद्ध मानते हैं और लिखते हैं- ''तुलसी को निकालकर हिंदी साहित्य की परंपरा से संबंध जोड़ना असंभव है। इस परंपरा में जो मूल्यवान है, जो कुछ महत्वपूर्ण है, जो कुछ सदा के लिए संग्रह करने योग्य है, वह तुलसी में सुरक्षित है। (शर्मा, रामविलास. 2001. *भारतीय सौंदर्यबोध और तुलसीदास.* साहित्य अकादमी प्रकाशन, दिल्ली, परिशिष्ट 1, पृ. 425)

भक्ति आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में तुलसीदास को रखते हुए -'*भक्ति आंदोलन और तुलसीदास*' में डॉ. शर्मा का मानना है कि स्वयं भक्त एवं संत कवि आपस में वैसा नहीं करते थे, जैसा आलोचक करते हैं। यह बात बिल्कुल दुरुस्त है कि आलोचकों का सारा वितान परस्पर भेद करने पर टिका है। इससे बेशक उनका भला होता है लेकिन साहित्य की भारी क्षति हो जाती है। इस अखिल भारतीय भक्ति आंदोलन और तुलसी काव्य का राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक महत्त्व रामविलास शर्मा की नज़र में ये रहा कि इससे भारतीय जनता की भावात्मक एकता दृढ़ हुई और हिंदी भाषी जनता की जातीय एकता भी।

तुलसीदास पर एक निबंध में डॉ. शर्मा ने उन्हें सामंत-विरोधी साबित किया है। इसके लिए उन्होंने तुलसी काव्य में सामंत विरोधी मूल्यों को तलाशा है। उसका सप्रमाण हवाला दिया है, 'ढोल, गंवार, शूद्र, पशु, नारी' को उन्होंने प्रक्षिप्त माना है। तुलसीदास लिखते हैं-

''यह सुधि कोल किरातन्ह पाई।
हरषे जनु नवनिधि घर आई।।''

(शर्मा रामविलास. 2001. *भारतीय सौंदर्यबोध और तुलसीदास*, साहित्य अकादमी प्रकाशन, दिल्ली, परिशिष्ट 1, पृ. 425)

डॉ. शर्मा की व्याख्या है कि– ''बीस पंक्तियों में राम से उनकी भेंट का वर्णन करने के बाद तुलसी यह टिप्पणी देते हैं– 'रामहिं केवल प्रेम पियारा। जानि लेउ जो जाननिहारा।' जब आप याद करेंगे कि मुगल बादशाहों के ज़माने में इन कोल-किरातों का आखेट होता था और जो पकड़े जाते थे, वे काबुल में बेच दिये जाते थे तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद के शासन में लाखों की तादाद में इन्हें जरायमपेशा करार दिया गया, तब तुलसी की प्रगतिशीलता समझ आएगी।'' (शर्मा, रामविलास. 2001. *भारतीय सौंदर्यबोध और तुलसीदास*, साहित्य अकादमी प्रकाशन, दिल्ली, परिशिष्ट 1, पृ. 454)

इसी तरह केवट और निषाद् प्रसंग, शबरी प्रसंग, हनुमान प्रसंग और अधोलिखित निम्नलिखित पंक्तियों के द्वारा उन्होंने सामंत विरोधी तुलसीदास की अपनी स्थापना पर बल देने की कोशिश की है–

(क) धूत कहौ, अवधूत कहौ, राजपूत कहौ,
जुलाहा कहौ काऊ।
काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब ----
माँगि के खैबो, मसीत के सोइबे लेबे
को एक न देबे को दोऊ।

(ख) कत विधि सृजी नारी जग माही।
पराधीन सपनेहुँ सुख नाही।।

(ग) नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं।

(घ) आगि बड़वागि ते बड़ी है आगि पेट की।

(ङ) खेती न किसान को, भिखारी को न
भीख भली।
बनिक को बनिज न, चाकर को चाकरी।।

(च) जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
ते नृप अवसि नरक अधिकारी।।

इन तमाम तर्कों, दावों के बावजूद हमारे सामने कबीर आ खड़े होते हैं। तुलना कष्टकारी होती है लेकिन लाभकारी भी। इस बात से जौ भर भी इंकार नहीं कि व्यापक मानवीय करुणा, भाषा, शिल्प, परंपरा-संस्कृति, लोक-मर्यादा एवं वैदुष्य में तुलसी की मिसाल मुश्किल है किंतु सामंती व्यवस्था का खण्डन या विरोध उनमें नहीं आ पाया, जैसा डॉ. शर्मा प्रस्तावित करते हैं। तुलसी ने सामंती व्यवस्था का खण्डन उससे बाहर आकर नहीं, उसके भीतर से ही किया है। तुलसी अपनी सीमा में भी छोटे नहीं हैं, इसलिए उनकी सीमा को छोड़ना भी ठीक नहीं।

इस पुस्तक में उनके दो व्याख्यान भी संकलित हैं। बातचीत का भी अंश है। बातचीत में उन्होंने आरक्षण, दलित साहित्य आदि पर जितनी बेबाकी से अपनी बात रखी है, वह आलोचकीय साहस की एक बानगी है। ज्यादातर विद्वान इन मुद्दों पर साफ़-साफ़ कुछ नहीं कहते, बातों की जलेबी बनाते हैं। इस प्रकार एक विस्तृत आयाम को समेटते हुए डॉ. रामविलास शर्मा की यह कृति रोचक है, नये विषयों का उद्घाटन करने वाली है और अंततः हिंदी आलोचना की एक अनुपम निधि है।

दिव्यानंद
शोध छात्र (एम.फिल्, हिंदी),
004, लोहित हॉस्टल, जे.एन.यू. कैम्पस,
नयी दिल्ली-110067